अध्याय ५०

(१) काकासाहेब दीक्षित, (२) श्री टेंबे स्वामी (३) बालाराम धुरन्धर की कथाएँ।

मूल सच्चरित्र के अध्याय ३९ और ४० को हमने एक साथ सम्मिलित कर लिखा है, क्योंकि इन दोनों अध्यायों का विषय प्रायः एक-सा ही है। अब मूल सच्चरित्र का अध्याय ५१ यहाँ ५० वें अध्याय के रूप में लिखा जा रहा है। इस अध्याय में (१) काकासाहेब दीक्षित, (२) टेंबे स्वामी और (३) बालाराम धुरन्धर की कथाएँ हैं।

प्रस्तावना

उन श्रीसाई महाराज की जय हो, जो भक्तों के जीवनाधार एवं सद्‌गुरु हैं। वे गीताधर्म का उपदेश देकर हमें शक्ति प्रदान कर रहे हैं। हे साई, कृपादृष्टि से देखकर हमें आशीष दो। जैसे मलयगिरि में पाये जाने वाला चन्दनवृक्ष समस्त तापों का हरण कर लेता है अथवा जिस प्रकार बादल जलवृष्टि कर लोगों को शीतलता और आनन्द पहुँचाते हैं, या जैसे वसन्त में खिले फूल ईश्वरपूजन के काम आते हैं, इसी प्रकार श्री साईबाबा की कथाएँ पाठकों तथा श्रोताओं को धैर्य एवं सान्त्वना देती हैं। जो कथा कहते या श्रवण करते हैं, वे दोनों ही धन्य हैं, क्योंकि उनके कहने से मुख तथा श्रवण से कान पवित्र हो जाते हैं।

यह तो सर्वमान्य है कि चाहे हम सैकड़ों प्रकार की साधनाएँ क्यों न करें, जब तक सद्‌गुरु की कृपा नहीं होती, तब तक हमें अपने आध्यात्मिक ध्येय की प्राप्ति नहीं हो सकती। इसी विषय में यह निम्नलिखित कथा सुनिये -

काकासाहेब दीक्षित (१८६४-१९२६)

श्री हरि सीताराम उपनाम काकासाहेब दीक्षित सन् १८६४ में वड़नगर के नागर ब्राह्मण कुल में खण्डवा में पैदा हुए थे। उनकी प्राथमिक शिक्षा खण्डवा और हिंगणघाट में हुई। माध्यमिक शिक्षा नागपुर में उच्च श्रेणी में प्राप्त करने के बाद उन्होंने पहले विल्सन तथा बाद में एल्फिन्स्टन कॉलेज में अध्ययन किया। सन् १८८३ में उन्होंने विधी स्नातक (L.L.B.) और कानूनी सलाहकार (Solicitor) की परीक्षाएँ उत्तीर्ण कीं, और फिर वे सरकारी सॉलिसिटर फर्म-मेसर्स लिटिल एण्ड कम्पनी में कार्य करने लगे। इसके पश्चात् उन्होंने अपनी एक सॉलिसिटर फर्म शुरू कर दी।

सन् १९०९ के पहले तो बाबा की कीर्त्ति उनके कानों तक नहीं पहुँची थी, परन्तु इसके पश्चात् वे शीघ्र ही बाबा के परम भक्त बन गए। जब वे लोनावला में निवास कर रहे थे तो उनकी अचानक भेंट अपने पुराने मित्र नानासाहेब चाँदोरकर से हुई। दोनों ही इधर-उधर की चर्चाओं में समय बिताते थे। काकासाहेब ने उन्हें बताया कि जब वे लन्दन में थे तो रेलगाड़ी पर चढ़ते समय कैसे उनका पैर फिसला तथा कैसे उसमें चोट आई, इसका पूर्ण विवरण सुनाया। नानासाहेब ने उनसे कहा कि यदि तुम इस लँगड़ेपन तथा कष्ट से मुक्त होना चाहते हो तो मेरे सद्गुरु श्री साईबाबा की शरण में जाओ। उन्होंने बाबा का पूरा पता बताकर उनके कथन को दुहराया कि, **''मैं अपने भक्त को सात समुद्रों के पार से भी उसी प्रकार खींच लूँगा, जिस प्रकार कि एक चिड़िया को जिसका पैर रस्सी से बँधा हो, खींच कर अपने पास लाया जाता है।''** उन्होंने यह भी स्पष्ट कर दिया कि यदि तुम बाबा के निजी जन न हो तो तुम्हें उनके प्रति आकर्षण भी न होगा और न ही उनके दर्शन प्राप्त होंगे। काकासाहेब को ये बातें सुनकर बड़ी प्रसन्नता हुई और उन्होंने कहा, वे शिरडी जाकर बाबा से प्रार्थना करेंगे कि शारीरिक लँगड़ेपन के बदले उनके चंचल मन को अपंग बनाकर परमानन्द की प्राप्ति करा दें।

कुछ दिनों के पश्चात् ही बम्बई विधान सभा (Legislative Assembly) के चुनाव में मत प्राप्त करने के सम्बन्ध में काकासाहेब दीक्षित अहमदनगर गए और सरदार काकासाहेब मिरीकर के यहाँ ठहरे। श्री बालासाहेब मिरीकर जो कि कोपरगाँव के मामलतदार तथा काकासाहेब मिरीकर के सुपुत्र थे, वे भी इसी समय अश्वप्रदर्शनी देखने के हेतु अहमदनगर पधारे थे। चुनाव का कार्य समाप्त होने के पश्चात् काकासाहेब दीक्षित शिरडी जाना चाहते थे। यहाँ पिता और पुत्र दोनों ही घर में विचार कर रहे थे कि काकासाहेब के साथ भेजने के लिये कौन सा व्यक्ति उपयुक्त होगा और दूसरी ओर बाबा अलग ही ढंग से उन्हें अपने पास बुलाने का प्रबन्ध कर रहे थे। शामा के पास एक तार आया कि उनकी सास की हालत अधिक शोचनीय है और उन्हें देखने वे शीघ्र ही अहमदनगर को आएँ। बाबा से अनुमति प्राप्त कर शामा ने वहाँ जाकर अपनी सास को देखा, जिनकी स्थिति में अब पर्याप्त सुधार हो चुका था। प्रदर्शनी को जाते समय नानासाहेब पानसे तथा अप्पासाहेब गरदे की दृष्टि अचानक शामा पर पड़ी। उन्होंने शामा से मिरीकर के घर जाकर काकासाहेब दीक्षित से भेंट करने तथा उन्हें अपने साथ शिरडी ले जाने को कहा। उन्होंने शामा के आगमन की सूचना काकासाहेब दीक्षित और मिरीकर को भी दे दी। सन्ध्या समय शामा मिरीकर के घर आए। मिरीकर ने शामा का काकासाहेब दीक्षित से परिचय करा दिया और फिर ऐसा निश्चित हुआ कि काकासाहेब दीक्षित उनके साथ रात १० बजेवाली गाड़ी से कोपरगाँव को रवाना हो जाएँ। इस निश्चय के बाद ही एक विचित्र घटना घटी। बालासाहेब मिरीकर ने बाबा के एक बड़े चित्र पर से परदा हटाकर काकासाहेब दीक्षित को उनके दर्शन कराये तो उन्हें यह देखकर आश्चर्य हुआ कि जिनके दर्शनार्थ मैं शिरडी जाने वाला हूँ, वे ही इस चित्र के रूप में मेरे स्वागत हेतु यहाँ विराजमान हैं। तब अत्यन्त द्रवित होकर वे बाबा की वन्दना करने लगे। यह चित्र मेघा का था और काँच लगाने के लिये मिरीकर के पास आया था। दूसरा काँच लगवा कर उसे काकासाहेब दीक्षित

तथा शामा के हाथ वापस शिरडी भेजने का प्रबन्ध किया गया। दस बजे से पहले ही स्टेशन पर पहुँचकर उन्होंने द्वितीय श्रेणी का टिकट ले लिया। जब गाड़ी स्टेशन पर आई तो द्वितीय श्रेणी का डिब्बा खचाखच भरा हुआ था। उसमें बैठने को तिलमात्र भी स्थान न था। भाग्यवश गार्डसाहेब काकासाहेब दीक्षित की पहचान के निकल आए और उन्होंने इन दोनों को प्रथम श्रेणी के डिब्बे में बैठा दिया। इस प्रकार सुविधापूर्वक यात्रा करते हुए वे कोपरगाँव स्टेशन पर उतरे। स्टेशन पर ही शिरडी को जानेवाले नानासाहेब चाँदोरकर को देखकर उनके हर्ष का पारावार न रहा। शिरडी पहुँचकर उन्होंने मस्जिद में जाकर बाबा के दर्शन किये। तब बाबा कहने लगे कि, ''मैं बड़ी देर से तुम्हारी ही प्रतीक्षा कर रहा था। शामा को मैंने ही तुम्हें लाने के लिए भेज दिया था।'' इसके पश्चात् काकासाहेब ने अनेक वर्ष बाबा की सानिध्य में व्यतीत किये। उन्होंने शिरडी में एक वाड़ा (दीक्षित वाड़ा) बनवाया, जो उनका प्रायः स्थायी घर हो गया। उन्हें बाबा से जो अनुभव प्राप्त हुए, वे सब स्थानाभाव के कारण यहाँ नहीं दिये जा रहे हैं। पाठकों से प्रार्थना है कि वे श्री साईलीला पत्रिका के विशेषांक (काकासाहेब दीक्षित) भाग १२ के अंक ६-९ तक देखें। उनके केवल एक दो अनुभव लिखकर हम यह कथा समाप्त करेंगे। बाबा ने उन्हें आश्वासन दिया था कि अन्त समय आने पर बाबा उन्हें विमान में ले जाएँगे, जो सत्य निकला। तारीख ५ जुलाई, सन् १९२६ को वे हेमाडपंत के साथ रेल से यात्रा कर रहे थे। दोनों में साईबाबा के विषय में बातें हो रही थीं। वे श्री साईबाबा के ध्यान में अधिक तल्लीन हो गए, तभी अचानक उनकी गर्दन हेमाडपंत के कन्धे से जा लगी और उन्होंने बिना किसी कष्ट तथा घबराहट के अपनी अंतिम श्वास छोड़ दी।

श्री टेंबे स्वामी

अब हम द्वितीय कथा पर आते हैं, जिससे स्पष्ट होता है कि सन्त परस्पर एक दूसरे को किस प्रकार भ्रातृवत् प्रेम किया करते हैं। एक बार श्री वासुदेवानन्द सरस्वती, जो श्री टेंबे स्वामी के नाम से प्रसिद्ध

हैं, ने गोदावरी के तीर पर राजमहेन्द्री में आकर डेरा डाला। वे भगवान् दत्तात्रेय के कर्मकांडी, ज्ञानी तथा योगी भक्त थे। नांदेड़ (निजाम स्टेट) के एक वकील अपने मित्रों के साथ उनसे भेंट करने आए और वार्त्तालाप करते-करते श्री साईबाबा की चर्चा भी निकल पड़ी। बाबा का नाम सुनकर स्वामीजी ने उन्हें करबद्ध प्रणाम किया और पुंडलीकराव (वकील) को एक श्रीफल देकर उन्होंने कहा कि, तुम जाकर मेरे भ्राता श्री साई को प्रणाम कर कहना कि मुझे न बिसरें तथा सदैव मुझ पर कृपादृष्टि रखें। उन्होंने यह भी बतलाया कि सामान्यतः एक स्वामी दूसरे को प्रणाम नहीं करता, परन्तु यहाँ विशेष रूप से ऐसा किया गया है। श्री पुंडलीकराव ने श्रीफल लेकर कहा कि, ''मैं इसे बाबा को दे दूँगा तथा आपका सन्देश भी कह दूँगा।''

एक मास के पश्चात् ही पुंडलीकराव अन्य मित्रों सहित श्रीफल लेकर शिरडी को रवाना हुए। जब वे मनमाड पहुँचे तो प्यास लगने के कारण एक नाले पर पानी पीने गए। खाली पेट पानी न पीना चाहिए, यह सोचकर उन्होंने कुछ चिवड़ा खाने को निकाला, जो खाने में कुछ अधिक तीखा-सा प्रतीत हुआ। उसका तीखापन कम करने के लिये किसी ने नारियल फोड़ कर उसमें खोपरा मिला दिया और इस तरह उन लोगों ने चिवड़ा स्वादिष्ट बनाकर खाया। अभाग्यवश जो नारियल उनके हाथ से फूटा, वह वही था, जो स्वामीजी ने पुंडलीकराव को भेंट में देने को दिया था। शिरडी के समीप पहुँचने पर उन्हें नारियल की स्मृति हो आई। उन्हें यह जानकर बड़ा दुःख हुआ कि भेंट स्वरूप दिये जाने वाला नारियल ही फोड़ दिया गया है। डरते-डरते और काँपते हुए वे शिरडी पहुँचे और वहाँ जाकर उन्होंने बाबा के दर्शन किये। बाबा को तो यहाँ नारियल के सम्बन्ध में स्वामी से बेतार का तार प्राप्त हो चुका था। इसीलिये उन्होंने पहले ही पुंडलीकराव से प्रश्न किया कि, ''मेरे भाई की भेजी हुई वस्तु लाओ।'' उन्होंने बाबा के चरण पकड़ कर अपना अपराध स्वीकार करते हुये अपनी चूक के लिये उनसे क्षमा याचना की। वे

उसके बदले में दूसरा नारियल देने को तैयार थे, परन्तु बाबा ने यह कहते हुए उसे अस्वीकार कर दिया कि, ''उस नारियल का मूल्य इस नारियल से कई गुना अधिक था और उसकी पूर्त्ति इस साधारण नारियल से नहीं हो हो सकती।'' फिर वे बोले कि, ''अब तुम कुछ चिन्ता न करो। मेरी ही इच्छा से वह नारियल तुम्हें दिया गया तथा मार्ग में फोड़ा गया है। तुम स्वयं में कर्त्तापन की भावना क्यों लाते हो?[१] कोई भी श्रेष्ठ या कनिष्ठ कर्म करते समय अपने को कर्त्ता न जानकर अभिमान तथा अहंकार से परे होकर ही कार्य करो, तभी तुम्हारी शीघ्रता से प्रगति होगी।''[२] कितना सुन्दर था उनका यह आध्यात्मिक उपदेश।

श्री बालाराम धुरन्धर(१८७८-१९१५)

सान्ताक्रूज, बम्बई के श्री बालाराम धुरन्धर प्रभु जाति के एक सज्जन थे। वे बम्बई के उच्च न्यायालय में एडवोकेट थे तथा किसी समय शासकीय विधि विद्यालय (Govt. Law School) बम्बई के प्राचार्य भी थे। उनका सम्पूर्ण कुटुम्ब सात्विक तथा धार्मिक था। श्री बालाराम ने अपनी जाति की योग्य सेवा की और इस सम्बन्ध में एक पुस्तक भी प्रकाशित कराई। इसके पश्चात् उनका ध्यान आध्यात्मिक और धार्मिक विषयों पर गया। उन्होंने ध्यानपूर्वक गीता, उसकी टीका ज्ञानेश्वरी तथा अन्य दार्शनिक ग्रन्थों का अध्ययन किया। वे पंढरपुर के भगवान विठोबा के परम भक्त थे। सन् १९१२ में उन्हें श्री साईबाबा के दर्शनों का लाभ हुआ। छः मास पूर्व उनके भाई बाबुलजी और वामनराव ने शिरडी आकर बाबा के दर्शन किये थे और उन्होंने घर लौटकर अपने मधुर अनुभव भी श्री बालाराम व परिवार के अन्य लोगों को सुनाये। तब सब लोगों ने शिरडी

---

१ प्रकृतेः क्रियमाणानि गुणैः कर्माणि सर्वशः।
अहंकारविमूढ़ात्मा कर्ताहमिति मन्यते॥ - गीता - ३।२७॥

२. तस्मादसक्तः सततं कार्यं कर्म समाचर।
असक्तो ह्याचरन्कर्म परमाप्नोति पूरुषः ॥ गीता ३॥१९॥

जाकर बाबा के दर्शन करने का निश्चय किया। यहाँ शिरडी में उनके पहुँचने के पूर्व ही बाबा ने स्पष्ट शब्दों में कह दिया कि ''आज मेरे बहुत से दरबारीगण आ रहे हैं।'' अन्य लोगों द्वारा बाबा के उपरोक्त वचन सुनकर धुरन्धर परिवार को महान् आश्चर्य हुआ। उन्होंने अपनी यात्रा के सम्बन्ध में किसी को भी इसकी पहले से सूचना न दी थी। सभी ने आकर उन्हें प्रणाम किया और बैठकर वार्त्तालाप करने लगे। बाबा ने अन्य लोगों को बतलाया कि, ''ये मेरे दरबारीगण हैं, जिनके सम्बन्ध में मैंने तुमसे पहले कहा था।'' फिर धुरन्धर भ्राताओं से बोले कि, ''मेरा और तुम्हारा परिचय ६० जन्म पुराना है।'' सभी नम्र और सभ्य थे, इसलिये वे सब हाथ जोड़े हुए बैठे-बैठे बाबा की ओर निहारते रहे। उनमें सब प्रकार के सात्विक भाव जैसे अश्रुपात, रोमांच तथा कण्ठावरोध आदि जागृत होने लगे और सबको बड़ी प्रसन्नता हुई। इसके पश्चात् वे सब अपने निवासस्थान को गए, और भोजन तथा थोड़ा विश्राम लेकर पुनः मस्जिद में आकर बाबा के पाँव दबाने लगे। इस समय बाबा चिलम पी रहे थे। उन्होंने बालाराम को भी चिलम देकर एक फूँक लगाने का आग्रह किया। यद्यपि अभी तक उन्होंने कभी धूम्रपान नहीं किया था, फिर भी चिलम हाथ में लेकर बड़ी कठिनाई से उन्होंने एक फूँक लगाई और आदरपूर्वक बाबा को लौटा दी। बालाराम के लिये तो यह अनमोल घड़ी थी। वे ६ वर्षों से श्वास-रोग से पीड़ित थे, पर चिलम पीते ही वे रोगमुक्त हो गए। उन्हें फिर कभी यह कष्ट न हुआ। ६ वर्षों के पश्चात् उन्हें एक दिन पुनः श्वास रोग का दौरा आया। यह वही महापुण्यशाली दिन था, जब कि बाबा ने महासमाधि ली। वे गुरुवार के दिन शिरडी आए थे। भाग्यवश उसी रात्रि को उन्हें चावड़ी उत्सव देखने का अवसर मिल गया। आरती के समय बालाराम को चावड़ी में बाबा का मुखमंडल भगवान् पांडुरंग सरीखा दिखाई पड़ा। दूसरे दिन काकड़ आरती के समय उन्हें बाबा के मुखमंडल की प्रभा पुनः अपने परम इष्ट भगवान् पांडुरंग के सदृश ही दिखाई दी।

श्री बालाराम धुरन्धर ने मराठी में महाराष्ट्र के महान् सन्त तुकाराम का जीवनचरित्र लिखा है परन्तु खेद है कि पुस्तक प्रकाशित होने तक वे जीवित न रह सके। उनके बन्धुओं ने इस पुस्तक को सन् १९२८ में प्रकाशित कराया। इस पुस्तक के प्रारम्भ में पृष्ठ ६ पर उनकी जीवनी से सम्बन्धित एक परिच्छेद में उनकी शिरडी यात्रा का पूरा वर्णन है।

॥ श्री सद्गुरु साईनाथार्पणमस्तु। शुभं भवतु॥